Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences
(A National Refereed Bi-Annual Journal) Vol II Issue 2, December 2016 ISSN: 2395-7352

'नौकर की कमीज' में निम्नमध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

आराधना शुक्ल*

संजय कुमार**

शोध-पत्र सार

विनोद कुमार शुक्ल समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वातन्त्र्योत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। 'नौकर की कमीज' इनका प्रथम उपन्यास है जिसमें उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय समाज के दु:ख, दैन्य, आशा-आकांक्षाओं का व्यापक चित्रण करने के साथ-साथ उनकी दु:खभरी जिन्दगी से छुटकारा पाने के प्रयासों का भी रेखांकन किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में विनोद कुमार शुक्ल के इसी चर्चित उपन्यास की समीक्षा की गयी है।

बीज शब्द: जादुई यथार्थवाद, निम्नमध्यवर्गीय जीवन, कार्यालय, महँगाई, बेरोजगारी, पलायन

समकालीन हिन्दी कविता के वरिष्ठ कवि विनोद कुमार शुक्ल का हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। अपनी रचनाओं में इन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। इनका कथा साहित्य अन्य समकालीन कथाकारों से अन्तर्वस्तु और रूप की दृष्टि से भिन्न रहा है। कविता के साथ-साथ कहानी व उपन्यास विधा पर भी इन्होंने अपनी सशक्त लेखनी चलायी है। इनकी कुछ रचनाओं के मराठी, उर्दू, मलयालम, अंग्रेजी और जर्मन आदि

* कु. आराधना शुक्ल, शोध छात्रा, पीएच. डी., हिन्दी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल, मिज़ोरम, ईमेल: shukla.aradhana2015@gmail.com

**प्रो. संजय कुमार, आचार्य, हिन्दी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल, मिज़ोरम, ईमेल: sanjaykumarmzu@gmail.com

भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। इनके चर्चित उपन्यास 'नौकर की कमीज' और कहानी 'बोझ' पर प्रसिद्ध फिल्मकार मणिकौल द्वारा बनायी गयी फिल्में अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में वाहवाही लूट चुकी हैं।

विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी लेखनी के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त किया जिसे 'जादुई यथार्थवाद' के नाम से जाना जाता है। इनके उपन्यासों विशेषकर 'नौकर की कमीज', 'खिलेगा तो देखेंगे' व 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में जादुई यथार्थवाद की झलक दिखाई देती है। वरिष्ठ आलोचक विष्णु खरे के शब्दों में - "विनोद कुमार शुक्ल में पारंपरीणता और प्रयोगधर्मिता, ठोसपन और गीतात्मकता, गद्यता और पद्यता का अद्वितीय सामंजस्य है।.....भारतीय निम्नमध्यवर्ग को लेकर जितनी गहरी निगाह, समझ और सहानुभूति विनोद कुमार शुक्ल के पास है उतनी और किसी उपन्यासकार में दिखाई नहीं देती।"[1] इनके उपन्यासों में भारतीय निम्नमध्यवर्गीय जीवन का वास्तविक एवं मर्मस्पर्शी अंकन मिलता है।

'नौकर की कमीज' विनोद कुमार शुक्ल का प्रथम व चर्चित उपन्यास है जो सन् 1979 ई. में प्रकाशित हुआ। "यह भारतीय जीवन के यथार्थ और आदमी की कशमकश को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है।"[2] इस उपन्यास के सन्दर्भ में डा. रामचन्द्र तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास' में लिखा है- "यह एक घटना विहीन उपन्यास है। कुल घटना घर से दफ्तर जाने और दफ्तर से घर आने तक सीमित है। पति दफ्तर में साहब का बेगार करता है और पत्नी घर में मकान मालकिन का हुक्म बजाती है। आज का निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति अभाव, घुटन और दैन्य को भोगते हुए भी सम्भ्रान्त जीवन बिताने की ललक पाले रहता है। उसकी छोटी-छोटी इच्छाएं भी पूरी नहीं हो पातीं।"[3] लेखक ने निम्नमध्यवर्ग की इसी पीड़ा और अन्तर्विरोध को संवेदना के स्तर पर पूरी मार्मिकता के साथ विभिन्न पात्रों -सन्तू बाबू (नायक), बड़े बाबू, गौराहा व देवांगनबाबू, मँहगू(चपरासी), महावीर(खोमचावाला), डाक्टर साहब, डाक्टर की बहन व सन्तू की पत्नी आदि के माध्यम से व्यंजित किया है।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सन्तू है, जिसे केन्द्र में रखकर उपन्यासकार ने पूरे उपन्यास का ताना-बाना बुना है। कथा में आदि से अन्त तक लेखक ने उसकी उपस्थिति

विभिन्न सन्दर्भों के माध्यम से दर्ज करायी है। सन्तू एक सीधा-सादा, समझदार, पढा-लिखा व ईमानदार व्यक्ति है, जो निम्नमध्यवर्गीय समाज के अन्तर्गत आता है। वह पेशे से दफ्तर का क्लर्क है जो अपने व्यसाय के प्रति ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ है। सन्तू यद्यपि नौकरी करने वाला व्यक्ति है फिर भी उसकी आय इतनी सीमित है किरोटी, कपडा, और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो पाती। इस सन्दर्भ में सन्तू की माँ का कथन दृष्टव्य है- "मैं सब्जी नहीं खाती। बहू तेरा जूठा खाती है। तुझसे बच जाएगा तो खाएगी। कितनी मँहगी सब्जी है। तुमको सब्जी अच्छी लगती है इसीलिए बनाने का मन होता है। नहीं तो कभी न बने।"[4] इस अर्थाभाव की समस्या से सिर्फ सन्तू ही नहीं बल्कि पूरा भारतीय निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय समाज ग्रस्त है। बड़े बाबू कहते हैं- "साहब भी अपने वेतन से खुद का मकान नहीं बनवा सकते, जिस ठाठ से रहते हैं उसमें तो पाँच दिन में उनका वेतन खत्म हो जाएगा। बाकी पच्चीस दिन घूरे में पड़े रहते हैं।" इसके जवाब में सन्तू बाबू भी कहते हैं- "हमारा महीना टुकडे-टुकडे होकर तीस दिन होता है।" तब देवांगन बाबू भी अपनी आर्थिक तंगी के बारे में संकेत करते हैं- "चिन्धी-चिन्धी होकर तीस दिन।"[5] इससे स्पष्ट होता है कि इस समस्या से आज भी निम्नवर्गीय, निम्नमध्यवर्गीय व मध्यवर्गीय समाज और व्यक्ति जूझ रहा है। लेखक ने न सिर्फ निम्नमध्यवर्गीय समाज की आर्थिक तंगी का चित्रण किया है जिसके तहत वे आधुनिक भौतिक सुख-सुविधाओं से वंचित हैं। लेखक ने उनकी उस मनोदशा का भी चित्रण किया है जिसमें उन सुविधाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करके सन्तोष का अनुभव किया जाता है। सन्तू बाबू कहते हैं- "अखबार और विज्ञापन से मैं बहुत-सी चीजों को सीख रहा था। .....बिना खर्चे के आधुनिक होने के लिए यह जरूरी है। यही मैं पत्नी से चाहता था। यानी सुख और सुविधाओं की जानकारी होनी चाहिए। .....मैं साधारण कमीज पतलून पहनता था, पर अच्छे फैशन की मुझमें समझ थी। .....होटल में आधी कप चाय पीकर मैं अखबार पढ़ लिया करता था।"[6]

लेखक ने निम्नमध्यवर्गीय समाज के दु:ख, दैन्य, आशा-आकांक्षाओं का चित्रण करने के साथ-साथ उनकी दु:खभरी जिन्दगी से छुट्कारा पाने के प्रयास व अतिरिक्त आमदनी के लिए किए जाने वाले प्रयासों को रेखांकित किया है। सन्तू अपनी दु:खभरी

जिन्दगी से छुट्कारा पाने का आकांक्षी है। वह कहता है- "बहुत से लोग दु:ख सहने का अभ्यास बचपन से करते हैं।.....घर के किसी कोने में पड़े-पड़े या दिन भर खटते, पेट भरने की कोशिश में अभ्यास होता रहता है।मैं दु:ख सहने का नगर स्तर या जिला स्तर का खिलाड़ी नहीं होना चाहता था।.....मैं दु:ख को खत्म करने के प्रयास के लिए स्टेमिना चाहता था। एक अच्छा फार्म पाना चाहता था।"[7] सन्तू का मित्र संपत अतिरिक्त आमदनी के लिए रोज शाम को एक घन्टे के लिए रेडियो का काम सीखने जाता था।

लेखक ने दफ्तर में कार्यरत साहब, बड़े बाबू और कर्मचारियों के स्वभाव व क्रिया-कलापों का विस्तृत वर्णन किया है। बड़े साहब और बड़े बाबू लोग अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कठोर एवं बेमुरव्वत व्यवहार करते हैं। इस तथ्य का उद्घाटन गौराहा बाबू के शब्दों में मिलता है- "आप किसी के साथ मुरव्वत नहीं करते। मेरी उंगली कटी थी। अभी भी इसमें दर्द है। परसों बहुत दर्द था। मैंने आप से कहा था कि आज टाइपिंग का काम नहीं करुंगा। पर आपने जोर देकर टाइप करने के लिए कहा.....घड़ी की टिक-टिक की तरह रुक-रुक कर दर्द होता रहता है।"[8]

लेखक ने बड़े बाबू के माध्यम से उन नौकरी पेशा वाले व्यक्तियों के चरित्र को उजागर करने का प्रयास किया है, जो अपने बॉस को खुश करने के लिए उनसे घनिष्ठता बनाए रखने तथा अपना उल्लू सीधा करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। बड़े बाबू को साहब के लिए एक आदर्श नौकर तलाशने की जिम्मेदारी दी जाती है। वे साहब के लिए कई नौकर तलाश चुके हैं पर वे साहब के मनमुताबिक नहीं रहते। तब बड़े बाबू मजाक-मजाक में सन्तू बाबू को ही नौकर की कमीज जबरदस्ती पहना देते हैं। जब सन्तू गौराहा बाबू व देवांगन बाबू से बड़े बाबू के इस कृत्य का वर्णन करता है। तब बड़े बाबू कहते हैं- "अगर हमारे इस तरह के खेल से साहब का मन बहलता है तो क्या बुरा है। साहब से हम लोगों को बहुत काम होते हैं। .....सबसे बड़ी बात यह है, यदि साहब खुश रहते हैं तो जानबूझकर हम लोगों द्वारा की गयी गलती को वे अनदेखा कर देते हैं।.....मैं साहब के लिए एक ऐसा काम करने के लिए मजबूर था जो तुम्हारी दृष्टि में अच्छा नहीं था।"[9]

लेखक ने दफ्तर में कार्यरत छोटे-मोटे कर्मचारियों की उस मनोवृत्ति को भी उजागर किया है जिसके तहत वे तथाकथित उच्चवर्ग से या अपने साहब से सम्पर्क बनाकर अपने अधीनस्थ व आस-पास के लोगों पर रौब जमाते रहते हैं। उपन्यास में बड़े बाबू, सन्तू, मंहगू व नाजिर इसी प्रवृत्ति के पोषक हैं। एक बार सन्तू कहता है -"साहब के बंगले की घास उखाड़ने का काम करने से मैं यह महसूस कर रहा थाकि मुझमें नाजिर, बड़े बाबू, बहुत से लोगों से सामना करने की असीम ताकत आ गई है। मंहगू को डांटने की,जोर से बोलने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। बल्कि मंहगू बहुत थके होने पर बाबू लोगों को झिड़क दिया करता था। बड़े बाबू की हैसियत छोटे-मोटे साहब से कम नहीं थी। मालखाने और नजारत से सम्बन्धित होने के कारण नाजिर की भी बहुत चलती थी। आज मैं फूला नहीं समा रहा था।"[10] उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में दफ्तर के परिवेश व दफ्तर के कर्मचारियों के स्वभाव व चाटुकारिता की प्रवृत्ति का प्रामाणिक अंकन किया है। प्रसिद्ध समीक्षक गोपाल राय अपने ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में लिखते हैं कि -"नौकर की कमीज के केन्द्र में एक दफ्तर का परिवेश है, जिसमें कुछ बाबू, एक बड़ा बाबू, एक बड़ा अफसर और चपरासी है..... विनोद कुमार शुक्ल ने दफ्तर की जिन्दगी - बाबुओं के दब्बूपन, बेचारगी, आपसी ईर्ष्या-द्वेष, खुशामदी मनोवृत्ति, अफसर की नौकरशाही मानसिकता और दफ्तर के जड़, हास्यास्पद नियमों आदि का प्रामाणिक अंकन किया है।"[11]

उपन्यास में मंहगू ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे सभी लोग अपने स्वार्थसिद्धि का साधन बनाना चाहते हैं। मंहगू यद्यपि दफ्तरका मामूली चपरासी है किन्तु अपनी मेहनत व ईमानदारी के कारण वह दफ्तर के सभी लोगों का विश्वसनीय पात्र है। मंहगू के इन्हीं गुणों की वजह से बाबू लोग दफ्तर के कार्य के अतिरिक्त अपना व्यक्तिगत कार्य भी उससे करवाने से नहीं चूकते हैं। उपन्यासकार लिखता है- "मंहगू बहुत ईमानदार और काम करने वाला चपरासी था। साहब लोगों में मंहगू को अपने काम के लिए लेने की होड़ रहती थी।.....सबसे बड़े साहब के लिए सबसे अच्छा चपरासी तय था। मंहगू अपने आप में कई नौकरों के बराबर था। खाना अच्छा बनाता था। तरह-तरह की नाश्ते की चीजें बनाता था। दौरे में साहब के साथ वह जरूर जाता।.....साहब के रहते हुए यदि मंहगू गायब

हो जाए तो बाई साहब की क्या हालत होगी यह वह नहीं जानती थीं।.....मंहगू दस-दस दिन लगातार अपने घर नहीं जाता था।"[12]

लेखक ने उपन्यास में तथाकथित सम्भ्रान्त लोगों के पास एक अच्छे नौकर की आवश्यकता के कारणों को भी रेखांकित किया है- "एक अच्छा नौकर परिवार में नौकर की तरह शामिल रहता था। जैसे परिवार में कौन है? दो पति-पत्नी, दो लड़के, एक लड़की और एक नौकर। यह आदर्श परिवार था। बड़े आदमियों में यह आम रिवाज था कि अपने और दूसरों के बीच एक समझदार नौकर जरूर रखेगा। बड़े आदमियों के आश्रित रिश्तेदारों के बीच में नौकर महत्वपूर्ण होते थे, जैसे डाक्टर की विधवा बहन और डाक्टर के बीच चौकीदार महत्वपूर्ण था।.....डाक्टर से जो कुछ कहना होता, वह चौकीदार से कहती। चौकीदार भूल जाता तो वह उसे और याद दिलाती।.....इस तरह बड़े लोग आश्रित रिश्तेदारों के बीच कभी बुरे नहीं बनते और झंझट को बीच में ही नौकरों से खत्म करवा देते हैं।"[13]

लेखक ने समाज में व्याप्त विषमता- अमीरी-गरीबी, शोषक-शोषित, पूँजीपति-श्रमिक वर्ग के मध्य जो खांई है, को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है और उस खांई को हमेशा बरकरार रखने वाले वर्चस्ववादी व सामन्तवादी विचारों के पोषक लोगों का रेखांकन दफ्तर के बड़े साहब के माध्यम से किया है। साहब का नौकरों, गरीबों व भूख से पीड़ित व्यक्तियों के सम्बन्ध में कथन है- "मैं अपनी कमीज नौकर को कभी नहीं देना चाहूंगा। जो मैं पहनता हूँ उसे नौकर पहने, यह मुझे पसन्द नहीं है। मैं घर का बचा खाना भी नौकरों को देने का हिमायती नहीं हूं। जो स्वाद हमें मालूम है उनको कभी नहीं मालूम होना चाहिए। अगर यह हुआ तो उनमें असन्तोष फैलेगा। बाद में हम लोगों की तकलीफें बढ़ जाएँगी।.....आवारा गरीब लड़के पत्ते चाटकर जादुई स्वाद का पता लगा लेते हैं जिससे चोरी, गुण्डागर्दी, और हक मांगनेवाली झंझटे बढ़ीं हैं।.....अगर ये स्वाद के चक्कर में पड़ गये तो अपनी जान बचानी मुश्किल होगी।"[14] उपर्युक्त कथन से न सिर्फ सामन्तवादी विचारधारा के पोषकों का परिचय मिलता है अपितु समंतवादियों एवं पूँजीपतियों की उस मानसिकता का भी पर्दाफाश होता है जिसमें श्रमिक, मजदूर, शोषित, पीड़ित वर्ग का अपने हक के प्रति जागरूक होने से उनकी वर्चस्ववादी सत्ता के खत्म होने का खतरा सताता रहता है। इसके अतिरिक्त लेखक ने सामन्तवाद के समर्थकों की उस मानसिकता को भी

उजागर करने का प्रयास किया है जिसमें सिर्फ और सिर्फ उनके (सामन्तवादी सोच रखने वाले व्यक्तियों) द्वारा बनाये गये नियमों और कानूनों में दूसरों को खरा उतरना पड़ता है। वे अपने नियमों व कानूनों में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं रखते हैं क्योंकि वे उन नियमों को ही सही मानते हैं। उपन्यास में आदर्श नौकर के लिए एक कमीज बड़े साहब ने बनवा रखी है,वह कमीज जिसको फिट हो जाएगी, साहब की दृष्टि में वही आदर्श नौकर साबित होगा। इस सन्दर्भ में साहब का कथन है -"नौकरों से पूछना कम चाहिए, बताना ज्यादा चाहिए। बताने के बाद पूछताछ होनी चाहिए कि जो बताया गया था, वह ठीक से पूरा हुआ या नहीं।.....एक अच्छे नौकर के नाप की कमीज बनवा ली गयी है।इसमें दूसरोंको फिट होना होगा।"[15]

लेखक ने शोषितों के प्रति अपनायी जाने वाली दमनकारी नीतियों पर भी इस उपन्यास में प्रकाश डाला है। विभिन्न प्रकार के शोषण से ग्रस्त सामान्य जीवन यापन करने वाले लोगों को शोषकों की रणनीतियों का आभास तक नहीं होता है। यह शोषण मामूली तरीके से असर डालता है जिसके परिणामस्वरूप विद्रोह भी मामूली किस्म का होता है। सन्तू कहता है- "संघर्ष का दायरा बहुत छोटा था। प्रहार बहुत दूर-दूर से और धीरे-धीरे होते थे इसलिए चोट बहुत जोर की नहीं लगती थी। शोषण इतने मामूली तरीके से असर डालता था कि विद्रोह करने की किसी की इच्छा नहीं होती थी। या विद्रोह भी बहुत मामूली किस्म का होता था।" वह आगे कहता है- "यदि एकबारगी कोई गर्दन काटने के लिए आये तो जान बचाने के लिए जी जान से लड़ाई होती। इसलिए एकदम से गर्दन काटने कोई नहीं आता। पीढ़ियों से गर्दन धीरे-धीरे कटती है। इसलिए खास तकलीफ नहीं होती और गरीबी पैदाइशी रहती है। गर्दन को हिलगाए हुए सब लोग अपना काम जारी रखते हैं- यानी गर्दन कटवाने का काम।"[16]

लेखक ने उच्च वर्ग या शोषकों की उस प्रवृत्ति को भी दर्शाने का प्रयास किया है जिसके तहत वे आम जन को प्रताड़ित, अपमानित, या शोषित करने के लिए एकजुट हो जाते हैं जबकि शोषितों में इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने में संगठन शक्ति का प्राय: अभाव पाया जाता है। शोषितों में संगठनशक्ति के अभाव की समस्या को प्रेमचन्द ने भी अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। शोषकों की एकजुटता को लेखक ने सन्तू के

माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है -"डाक्टर साहब और मेरे साहब में अच्छी पहचान होगी। इसलिए मैं थोड़ा संकोच कर गया। अच्छे नौकरों को ये आपस में बाँट लेते हैं। साहब एक रोज किसी को फोन कर रहे थे कि एक अच्छी नौकरानी है, उन्हें जरुरत नहीं है.....उनको रखना है तो रख लें।"[17]

लेखक ने उच्चवर्ग द्वारा बनाये गये आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं को शोषित वर्ग पर थोपने एवं लागू करने का चित्रण किया है साथ ही वर्चस्ववादी नियमों, कानूनों व मान्यताओं के प्रति शोषित वर्ग द्वारा किये जा रहे विरोध के स्वर को भी वाणी दी है। बड़े साहब द्वारा बनवायी गयी कमीज, जो आदर्श नौकर का सांचा थी, को सन्तू बाबू, गौराहा बाबू, व देवांगन बाबू टुकड़े-टकड़े कर देते हैं। सन्तू कहता है- देवांगन बाबू, नौकर की कमीज मेरे पास है।.....कमीज अखबार में लिपटी और धागे से बंधी हुई है।" झोले से कमीज के बंडल दिखाते हुए सन्तू कहता है- "यह आदर्श नौकर का सांचा है।आदर्श उनके बनाये हुए हैं। इस झंझट को खत्म कर दें।"[18] उस कमीज के जिस तरीके से चिथड़े किये गए वह प्रतीकात्मक है-"मैंने नौकर की कमीज का बंडल जाली के पार उछाला तो देवांगन से ज्यादा फुर्ती गौराहा बाबू ने दिखाई और अपनी पूरी ताकत से नहीं,अपनी पूरी घृणा से, हवा में बंडल को मुक्का मारा तो अखबार फट गया। .....एक आदमी की घृणा से काम नहीं चलेगा। .....कमीज बहुत मजबूत थी। शायद जीन की थी। चर्र-चर्र की आवाज आई और कमीज का एक बड़ा टुकड़ा देवांगन बाबू के हाथ में रह गया और दूसरा गौराहा बाबू के हाथ में।.....मैंने फटी कमीज का टुकड़ा झपट लिया और तुरन्त उसके दो टुकड़े किए।.....हम तीनों अलग-अलग कमीज के टुकड़े को फाड़ते रहे।"[19] यहाँ पर कमीज को बहुत मजबूत दिखाने से तात्पर्य वर्चस्ववादी व्यवस्था की मजबूती से है और उसका विरोध करने के लिए एक आदमी की घृणा एवं ताकत से काम नहीं चलेगा बल्कि सामूहिक विरोध से ही सामन्तवादी व्यवस्था की चूलें हिल सकेंगी।

तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले लोगों द्वारा बेगारी करवाने की प्रवृत्ति और उसके प्रति विद्रोह का भाव को भी सन्तू व उसकी पत्नी के माध्यम से प्रकट किया गया है। सन्तू बड़े साहब की बेगारी करता था तो उसकी पत्नी डाक्टरनी की रसोईदारिन जैसी बन गयी थी। जब सन्तू पत्नी से कुछ दिन और डाक्टरनी की ज्यादती सह लेने या बेगारी करने की

बात करता है तब उसकी पत्नी कहती है- "आज से छुटकारा हो गया। मैं उनकी खरीदी नौकरानी नहीं हूँ। चौकीदार बुलाने आएगा तो इंकार कर दूंगी।" तब सन्तू कहता है- "मैं भी दफ्तर के समय दफ्तर में रहूँगा। साहब के बंगले नहीं जाऊँगा।"[20] इस प्रकार लेखक ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से विरोध के स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की है जिससे पता चलता है कि बेगारी करने वाले लोगों में भी अपने श्रम, समय, व कर्तव्य के प्रति जागरूकता आने लगी है और वे अपने शोषण का मुखर विरोध करने लगे हैं।

उपन्यासकार ने तथाकथित सम्पन्न घराने के लोगों की उस प्रवृत्ति को भी दर्शाया है जिसके तहत उनके द्वारा अपने घर पर आश्रित या आगन्तुक रिश्तेदारोंके प्रति भेद-भाव का व्यवहार किया जाता है। डाक्टरके माध्यम से लेखक ने इस मानसिकता को उजागर किया है- "बंगले में दो तरह का खाना बनता था - डाक्टर और डाक्टरनी के लिए अलग खाना बनता था, उसकी विधवा बहन अपने और भतीजे के लिए अलग खाना बनाती थी। जब दूसरे नाते-रिश्तेदार आते थे तो इन्हीं के साथ उनके लिए भी खाना बन जाता था। डाक्टर और डाक्टरनी के लिए बहुत पौष्टिक और स्वादिष्ट खाना बनता था।"[21]

तथाकथित उच्चवर्गीय घरों में आश्रित बूढ़ी विधवा स्त्रियों की दयनीय स्थिति का चित्रण डाक्टर की विधवा बहन के माध्यम से किया गया है- "इतने बड़े बंगले में बहुत कम लोग रहते थे। डाक्टर की एक बूढ़ी विधवा बहन थी।.....डाक्टर की विधवा बहन बहुत अहसानमन्द थी कि डाक्टर ने उसे सहारा दिया। घर का सारा काम वही करती थी। पाँच बजे सुबह से रात के एक बजे तक, जब तक डाक्टर खाना नहीं खा लेते थे, उसे फुरसत नहीं मिलती थी। डाक्टर साहब की गृहस्थी में उसके लिए काम की कमी नहीं थी।"[22] जिस अहसानफरोशी की शिकार डाक्टर की विधवा बहन थी उसी अहसानफरोशी का शिकार सन्तू भी था क्योंकि जब सन्तू बीमार था तब डाक्टर ने सन्तू का इलाज बिना फीस लिए ही किया था जिसके कारण सन्तू भी डाक्टर के अहसान तले दबा हुआ था जिसके परिणामस्वरूप सन्तू की पत्नी डाक्टरनी की बेगारी करने पर मजबूर हो जाती है। डाक्टरनी को जब भी जरूरत पड़ती, चौकीदार से सन्तू की पत्नी को बुलवा लेती। सन्तू की पत्नी कहती है - "डाक्टर की बहन की तबियत ठीक नहीं है। खाना वह बना नहीं सकती। डाक्टरनी सहायता करने के लिए कह रहीं थी.....इंकार करते नहीं बना।"[23]

हमारे समाज में सदियों से यह कुप्रथा विद्यमान रही है कि शारीरिक रूप से विकृत व्यक्ति अपनी विरूपता से ही पहचाना जाता है। आम जनता उस व्यक्ति को उसकी विरूपता से ही सम्बोधित करती है और यह विरूपता इस व्यक्ति की पहचान बन जाती है। यदि कोई व्यक्ति आँख से अन्धा है तो लोग उसे सूरदास नाम से ही सम्बोधित करते हैं, उसका मूल नाम लेना वे उचित नहीं समझते हैं। इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में महावीर खोमचावाला है जिसके गर्दन और कन्धे के बीच में बड़ी सी रसौली है। महावीर लोगों के बीच में रसौली वाले नाम से ही पहचाना जाता है। महावीर सन्तू बाबू से कहता है -"चेहरे से पहचानने वाले कम हैं। रसौली से सभी पहचान जाते हैं। यदि रसौली छुपाकर रखूँ तो ग्राहकी टूट जाएगी। ठंड के दिनों में गले में अंगोछा लपेटो तो रसौली छुप जाती है। एक दिन एक आदमी आया, उसने मुझसे पूछा- यहाँ नीम के पेड़ के नीचे एक महावीर खोमचावाला भी बैठता था, मर गया? मैंने कहा मैं महावीर हूँ। उसने कहा- अंगोछे से तुम्हारी रसौली छुपी है। यही बात है। मैं पहचान नहीं पाया।"[24] जब सन्तू महावीर से कहता है कि "रसौली तुम्हारा ट्रेडमार्क है। रसौली वाले महावीर, गदावाले महावीर नहीं। इसे छुपाकर रखो। कहीं ग्राहक बिदक न जाएँ"। तब महावीर कहता है- "सच में यह मेरा ट्रेडमार्क है। छुपाकर रखूँगा तो लोग पहचानेंगे कैसे? मैंने अपनी पहचान मजबूत बना ली है, यानी म्युनिसिपल स्कूल के बाहर नीम के पेड़ के नीचे, मूँगफली बेचनेवाला महावीर, जिसके कन्धे में रसौली है।"[25] महावीर के कथन से स्पष्ट है कि शारीरिक विकार से ग्रस्त लोगों के प्रति आज भी वही धारणा विद्यमान है, जो सदियों पूर्व थी।

यह बात सच है कि विनोद कुमार शुक्ल ने प्रस्तुत उपन्यास में दफ्तर की जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है किन्तु इसके अतिरिक्त भी लेखक ने समाज में व्याप्त अन्य समस्याओं यथा- बेरोजगारी, मँहगाई, कुशल प्रशिक्षण का अभाव, स्त्री की दशा आदि पर भी प्रकाश डाला है। नौकरी पेशा वाले व्यक्तियों की आय सीमित होने के कारण उन्हें अतिरिक्त आमदनी के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों एवं उन्हें संचालित करने वाले अयोग्य प्रशिक्षकों की वजह से कुछ जरूरतमन्द वहाँ भी सीखने में असमर्थ होते हैं। वहाँ तो प्रशिक्षण के बजाय आम बेरोजगार एवं जरूरतमन्द लोगों का सिर्फ आर्थिक शोषण किया जाता है। सन्तू से दर्जी

अपनी आपबीती बताते हुए कहता है- "तीन महीने में मैं रेडियो बनाना सीख जाऊँगा, यह सोचकर मैं भर्ती हुआ था। आठ महीने हो गए, अभी तक मुझमें आत्मविश्वास नहीं आया कि किसी बिगड़े रेडियो को सुधार दूँ। .....एक-एक घन्टे की यहाँ पढ़ाई होती है। .....सुबह आठ बजे से लेकर रात के नौ बजे तक यहाँ पढ़ाई होती है। वह पढ़ाता क्या है? थोड़ा सा बताकर खुद सीखने के लिए छोड़ देता है। कहीं चला जाएगा। घूम-फिरकर आएगा, तब कुछ और बता देगा। .....जो उसकी खुशामद करता है उसे थोड़ा बहुत बता देता है। यहाँ से सीखकर कोई नहीं जाता, सब छोड़कर जाते हैं।"[26] लेकिन इस यथार्थ से अपरिचित सन्तू का मित्र संपत भी अतिरिक्त आमदनी के लिए प्रयास शुरू कर देता है। वह गोलबाजार में एक रेडियो स्कूल में रोज शाम को सात बजे एक घन्टे के लिए रेडियो का काम सीखने जाता है। जबकि सन्तू को हालत सुधारने के लिए अधिक-से-अधिक मेहनत करने के उपाय पर विश्वास नहीं है। "कुदाली चलाने वाला मजदूर रात-दिन कुदाली चलाकर भी अपनी हालत नहीं सुधार सकता था।.....दरअसल बाजार में मेहनत की कोई कीमत नहीं है। आदमी की अधिक-से-अधिक आमदनी और कम-से-कम आमदनी में भयानक अन्तर था। इसको देखकर दहशत होती थी।"[27]

उपन्यास में महँगाई व महँगाई के परिणामस्वरूप लोगों के जीवन में आने वाले परिवर्तन को भी रेखांकित किया गया है। महँगाई की समस्या से न सिर्फ कस्बों में रहनेवाले निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति परेशान हैं बल्कि गाँवों में रहने वाले लोग भी इस समस्या से ग्रसित हैं जिसके कारण शहरों की ओर उनका पलायन तीव्र गति से हो रहा है। सन्तू बाबू के शब्दों में- "मंहगाई के बढ़ते रहने के कारण लोगों की शिकायत करने की हिम्मत टूट गयी थी। झुंड के झुंड देहाती शहर के भिन्न-भिन्न हिस्सों में घुसते।.....शहर के बीच पहुँचते-पहुंचते वे लोग कुछ बैंच-बाच, कुछ लुटाकर छुटकारा पाते और जैसे-तैसे जान बचाते हुए नौकर बाजार में अपने पूरे परिवार के साथ खड़े हो जाते।"[28] महँगाई, बेरोजगारी एवं पलायन की समस्या अपने विकराल रूप में सर्वत्र विद्यमान है। सभी प्रदेशों के गाँवों से दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, हैदराबाद एवं बंगलौर जैसे महानगरों की ओर पलायन तीव्र गति से हो रहा है। परम्परागत व्यवसायों के अलाभकारी होने, बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं महंगाई के परिणामस्वरूप लोग मजदूरी करने पर विवश हो गये हैं। नौकर

बाजार में भीड़ के बढ़ते जाने से मजदूरी इतनी सस्ती हो गयी है कि बहुत से लोग तो मजदूरी का काम छोड़कर भीख माँगने तक को विवश हो गये हैं- "बहुत से मोची, बढ़ई खजरू मोची की तरह काम खोजने के बदले भीख माँगने लगे थे।"[29]

उपन्यास में लेखक ने उन सेठ-साहूकारों के स्वभाव को उजागर करने का प्रयास किया है, जो समाज में हो रहीं गतिविधियों से निर्लिप्त रह कर, सामाजिक उत्तरदायित्व से विमुख होकर अपने मूल्यवान समय व बुद्धि-विवेक को सट्टेबाजी जैसे कार्यों में लगाकर आनन्द का अनुभव करते हैं- "जहाँ साठ इंच वर्षा होती हो, वहाँ बरसात में धूप का निकलना अच्छा सट्टा हो सकता था। सद्दानी चौक में सेठ लोग सुबह दस बजे से लेकर शाम तक सट्टा खेलते थे। आकाश की तरफ देखते हुए ये लोग खुले आकाश में काले बादल के छोटे टुकड़े को देखकर सट्टा लगाते। सीधे आकाश से बूँद टपकने पर, छत से इकट्ठा होकर बूँदों के टपकने पर सट्टा लगता था।"[30]

लेखक ने स्त्रियों की शोषित, प्रताड़ित व दयनीय स्थितियों का भी चित्रण किया है। संपत की माँ अपनी सास, पति, व पुत्र के द्वारा प्रताड़ित की जाती है तो रामबली पाण्डे की बहू को जहर देकर मौत के घाट उतार दिया जाता है। सन्तू अपनी पत्नी से कहता है- "रामबली पाण्डे की बहू बहुत खूबसूरत थी। सभी लोग उसकी खूबसूरती से परेशान थे। घर-भर को उसका उठना-बैठना, बोलना-चालना बुरा लगता था। एक दिन उसे जहर देकर मार डाला गया। उन लोगों ने पानी में पतला-पतला आटा घोला और कमरे में, आंगन में, जगह-जगह डाल दिया। उसके ऊपर राख डाल दी गयी, जैसे उल्टी के ऊपर डाल दी जाती है। फिर हल्ला मचा कि बहू हैजे से मर गयी।"[31] इसी तरह सुखलाल तिवारी की पत्नी अपनी सास व पति दोनों से परेशान होकर कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेती है। स्त्रियों के प्रति अपनाये जानेवाले उपर्युक्त शोषण के तरीके आज भी अपने उसी रूप में मौजूद हैं। आज भी बहुसंख्यक स्त्रियां अपने ससुराल पक्ष द्वारा किसी न किसी रूप में प्रताड़ित होती रहती हैं, खासकर वे स्त्रियां जो अनपढ, सीधी-सादी व अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक नहीं हैं। जिनकी नियति ही बन जाती है ससुराल पक्ष के अत्याचार सहना।

यह उपन्यास अपने शिल्प व रचना-विधान की दृष्टि से बहुत ही सुगठित व रोचक है। इसमें दफ्तर के परिवेश व उसमें कार्यरत कर्मचारियों की खुशामदी मनोवृत्ति,

अफसरशाही की प्रवृति, नौकरशाही, अहसानफरोशी व बेगारी करवाने की प्रथा के साथ-साथ महँगाई, बेरोजगारी, स्त्रियों की दशा आदि का प्रामाणिक अंकन प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में प्रयुक्त भाषा सहज, सरल एवं पात्रानुकूल है। प्रत्येक पात्र अपनी बोली-बानी के साथ उपन्यास में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इसमें लेखक ने देशज शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया है जिसके कारण वह अपनी बात पाठक के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुआ है, लेकिन कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके अर्थ शब्दकोश में भी नहीं मिलते। जैसे- लाखड़ी, पछोरना, हिलगाना, सहिलाना आदि, जिसके परिणामस्वरूप पाठक को उन शब्दों के अर्थ समझने में कठिनाई होती है और कथारस के प्रवाह में शिथिलता आती है।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। वाक्य-विन्यास की दृष्टि से इसमें छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया गया है। उपन्यास में हर अध्याय के आरम्भ में लेखक ने सूत्रात्मक वाक्यों का प्रयोग किया है, जिसके द्वारा उस अध्याय से संबंधित घटना की जानकारी संक्षिप्त प्रतीकात्मक रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत की गयी है। सूत्रात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने अपने अन्य उपन्यासों में भी किया है। यह उनकी शैली की ख़ास विशेषता है। अपनी शैलीगत विशेषता के कारण ही लेखक ने अन्य समकालीन रचनाकारों के मध्य अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी लेखनी के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त किया जिसे 'जादुई यथार्थवाद' के नाम से जाना जाता है। इनके उपन्यासों 'नौकर की कमीज', 'खिलेगा तो देखेंगे' व 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में जादुई यथार्थवाद की झलक दिखाई देती है। इन उपन्यासों में इन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। इसीलिए इनका कथा साहित्य अन्य समकालीन कथाकारों से अन्तर्वस्तु और रूप की दृष्टि से भिन्न रहा है। 'नौकर की कमीज' उपन्यास में भी इन्होंने दफ्तर के परिवेश और उसके कर्मचारियों के जीवन के माध्यम से समकालीन समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं और भारतीय निम्नमध्यवर्गीय जीवन का वास्तविक एवं मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ सूची

1. विनोद कुमार शुक्ल, दीवार में एक खिड़की रहती थी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2008, पृष्ठ- फ्लैप से
2. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1994, पृष्ठ- फ्लैप से
3. रामचन्द्र तिवारी, हिंदी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण- 2010, पृष्ठ- 156-157
4. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1994, पृष्ठ- 11
5. वही, पृष्ठ- 67
6. वही, पृष्ठ- 16-17
7. वही, पृष्ठ- 16
8. वही, पृष्ठ- 36
9. वही, पृष्ठ- 137
10. वही, पृष्ठ- 186
11. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2002, पृष्ठ- 361
12. विनोद कुमार शुक्ल, नौकर की कमीज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1994, पृष्ठ- 42
13. वही, पृष्ठ- 122
14. वही, पृष्ठ- 124
15. वही, पृष्ठ- 124
16. वही, पृष्ठ- 18
17. वही, पृष्ठ- 51
18. वही, पृष्ठ- 144
19. वही, पृष्ठ- 145

20. वही, पृष्ठ- 219
21. वही, पृष्ठ- 52
22. वही, पृष्ठ- 51
23. वही, पृष्ठ- 81
24. वही, पृष्ठ- 189
25. वही, पृष्ठ- 188
26. वही, पृष्ठ- 120
27. वही, पृष्ठ- 221
28. वही, पृष्ठ- 220
29. वही, पृष्ठ- 221
30. वही, पृष्ठ- 57
31. वही, पृष्ठ- 111

The Life of the Lower Middle Class in the Novel 'Naukar Kee Kameez'

Ms. Aradhana Shukla*
Prof. Sanjay Kumar**

Abstract

Vinod Kumar Shukla is a well-known author of contemporary Hindi Fiction. In his writings, he narrates the reality of the socio- economic and cultural scenario of post-independent Indian society. 'Naukar kee Kameez' is his debut novel. In this novel, he narrates the pain, poverty and hopes of the lower middle class society. He also expresses the struggles of this class in attaining freedom from their painful existence. In this article, this famous novel of Vinod Kumar Shukla is critically analyzed. This novel explores and examines the day- to- day exploitation and humiliation of the lower ranking staffs of the government offices by their superiors. By his conscious critique he brings to view the painful sufferings of the lower middle class in Indian society.

*Ms. Aradhana Shukla, Ph.D. Research Scholar, Dept. of Hindi, Mizoram University, Aizawl
Email: shukla.aradhana2015@gmail.com
**Prof. Sanjay Kumar, Professor, Dept. of Hindi, Mizoram University, Aizawl
Email: sanjaykumarmzu@gmail.com